आत्मानुभूति में न्यायशास्त्र के ज्ञान की उपयोगिता

–प्रो. वीरसागर जैन

प्रोफेसर, जैनदर्शन विभाग

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत

विद्यापीठ,

मानित विश्वविद्यालय, नई दिल्ली -110016

फोन- 011-26177207, 9868888607

veersagarjain@gmail.com

"एक घड़ी आधी घड़ी, आधी घड़ी आधी से भी आध |

जो आतम अनुभव करो, कटे कोटि अपराध ||"

आत्मानुभूति सम्पूर्ण द्वादशांग का सार है, सर्व आचार्यों के सर्व शास्त्रों के सर्व कथनों का एक मात्र मूल प्रतिपाद्य है | जैन दर्शन के अनुसार सच्चे धर्म का प्रारम्भ भी आत्मानुभूति से ही होता है, धर्म की वृद्धि भी आत्मानुभूति से ही होती है और धर्म की पूर्णता भी आत्मानुभूति से ही होती है | अतः वास्तव में देखा जाए तो आत्मानुभूति ही हम सबका एक मात्र मुख्य कर्तव्य है | जिनवाणी का सच्चा उपासक वास्तव में वही है जो निरंतर एक आत्मानुभूति का ही प्रयत्न करता रहता है, उसके अतिरिक्त एक क्षण भी कहीं व्यर्थ नहीं करता | अतः यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि आत्मानुभूति में न्यायशास्त्र के ज्ञान की क्या उपयोगिता है, क्योंकि हमें तो एक आत्मानुभूति ही चाहिए | यही सर्व शास्त्रों का उपदेश है - आत्मानुभूति जरूरी है, बाकी सब मजबूरी (साधन) है | आचार्य अमृतचंद्र ने तो अपनी समयसार-टीका आत्मख्याति में यहाँ तक कह दिया है कि तुम कैसे भी करके, मरके भी आत्मानुभूति करो | यथा-

"अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्

अनुभव भव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम् |" -समयसारकलश, 23

इसीप्रकार महाकवि भूधरदासजी ने एक सवैये में आत्मानुभूति के विषय में बहुत अच्छा कहा है, जो बहुत ही गम्भीरता से समझने योग्य है | यथा –

जीवन अलप आयु बुधि बल हीन तामें, आगम अगाध सिन्धु कैसे ताहि डाकहै |

द्वादशांग मूल एक अनुभव अपूर्व कला, भव दाघ हारी घनसार की सलाक है ||

यही एक सीख लीजे याही को अभ्यास कीजे, याको रस पीजे ऐसो वीर जिन वाक् है |

इतनो ही सार ये ही आतम को हितकार, याही लौं मदार और आगे ढूक ढाक है ||

भावार्थ- सम्पूर्ण द्वादशांग का मूल एक आत्मानुभव है | हमें एक मात्र उसी को सीखना चाहिए, उसी का अभ्यास करना चाहिए और सदा उसी का रस पान करना चाहिए | यही एक सार है और आत्म हितकार है, शेष सब व्यर्थ है |

इसीप्रकार के और भी अनेक उद्धरण आत्मानुभूति के महत्त्व को बताने वाले यहाँ प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि जीवन में करने लायक कार्य वस्तुतः एक ही है और वह है आत्मानुभूति, किन्तु प्रश्न यह है कि यह आत्मानुभूति हो कैसे ? हम सब चाहते तो बहुत है, परन्तु होती क्यों नहीं ?

उत्तर- यही तो विशेष बात है | मात्र चाहने से क्या होता है ? कार्य तो अपनी विधि से ही होगा | अन्य लोगों के अध्यात्म में और जैन अध्यात्म में भी यही तो मूल अंतर है कि अन्यत्र तो यूँ ही निराधार अध्यात्म की बातें की जाती हैं, किन्तु जैन अध्यात्म भावुकता मात्र नहीं है, अपितु उसके पीछे आगम का ठोस धरातल है | उसके अनुसार आत्मानुभूति से पूर्व सम्यक् आत्मज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है | आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है | उसके बिना आत्मानुभूति कथमपि सम्भव नहीं है | आचार्य माइल्ल धवल ने अपने नयचक्र में स्पष्ट लिखा है-

"तच्चाणेसणकाले समयं बुज्झेहि जुत्तिमग्गेण |

णो आराहणसमये पच्चक्खो अणुहवो जम्हा ||"

-द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र

268

अर्थ – तत्त्वान्वेषण के काल में समय (आत्मा) को युक्तिमार्ग (न्यायशास्त्र) से भलीभांति समझना चाहिए और जब तत्त्व की आराधना (अनुभव) का काल आए तो उस युक्तिमार्ग (प्रमाण-नय-निक्षेप) को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि आत्मा का अनुभव तो प्रत्यक्ष है |

इससे सिद्ध होता है कि आत्मतत्त्व की अनुभूति से पूर्व आत्मतत्त्व का अन्वेषण अनिवार्य है | अन्वेषण अर्थात् अनुसंधान, स्पष्ट, निष्पक्ष एवं दृढ़ निर्णय |

तथा ऐसा यह अन्वेषण, अनुसंधान या निर्णय न्यायशास्त्र से ही सम्भव है, उसके बिना नहीं | अतः हमें थोड़ा-बहुत न्यायशास्त्र का ज्ञान अवश्य करना चाहिए | न्यायशास्त्र के द्वारा हम आत्मा के सम्बन्ध में उसके विविध पक्षों का निष्पक्ष, स्पष्ट एवं दृढ़ निर्णय कर सकेंगे और फिर उससे सहज ही आत्मानुभूति का महान कार्य सम्पन्न होगा | यही राजमार्ग है | उदाहरणार्थ न्यायशास्त्र के द्वारा हमें आत्मा के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दुओं को भलीभांति समझना होगा; सम्यक् लक्षण, हेतु, तर्क, अनुमान आदि के द्वारा एकदम पक्का निर्णय करना होगा| इसके बाद सहज ही ध्यानाभ्यास से आत्मानुभूति की प्राप्ति होगी और न केवल होगी, अपितु बारम्बार होती रहेगी | यथा –

1. आत्मा की सत्ता अवश्य है, क्योंकि वह मैं स्वयं ही तो हूँ |
2. आत्मा जड़ या अचेतन नहीं है, चेतन ही है, क्योंकि प्रत्यक्ष जानता-देखता अनुभव में आ रहा है |
3. आत्मा शरीर नहीं है अपितु उससे भिन्न ही है, जैसे कि गृहस्वामी गृह से भिन्न होता है अथवा तलवार म्यान से भिन्न होती है | आज तो चिकित्सा विज्ञान ने भी दिखा दिया है कि सारा शरीर बदल देने पर भी ज्ञान वही रहता है –इससे भी सिद्ध होता है कि आत्मा शरीर से भिन्न है |
4. आत्मा में स्पर्श, रस, गंध आदि पुद्गल-गुण नहीं पाए जाते; क्योंकि उनमें चेतना नहीं है या चेतना उनके बिना भी रहती है |
5. चेतना आत्मा का स्वभाव है, अत: उसका भी कभी नाश नहीं हो सकता |
6. चेतना [ज्ञान-दर्शन] दुःख का कारण नहीं है, क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव है |
7. दुःख का कारण राग-द्वेष है, ज्ञान नहीं | दुःख की व्याप्ति राग के साथ है, ज्ञान के साथ नहीं |
8. आत्मा को चेतना के अवलंबन से जाना जा सकता है अर्थात् विशेष ज्ञान का तिरोभाव करके मात्र सामान्य ज्ञान के आविर्भाव से आत्मा को जाना जा सकता है |
9. आत्मा किसी का अंश या अपूर्ण वस्तु नहीं है, पूर्ण और अखंड वस्तु ही है, क्योंकि एक वस्तु की दो और दो वस्तुओं की एक हो ही नहीं सकती |
10. आत्मा का कभी नाश नहीं हो सकता, क्योंकि सत् का कभी नाश नहीं होता |
11. आत्मा का कभी जन्म भी नहीं हुआ, हो ही सकता, क्योंकि सत् की कभी उत्पत्ति नहीं होती |
12. आत्मा एक ही नहीं है, अपितु अनंत हैं | सब स्वतंत्र व पूर्ण हैं |
13. वह मात्र स्व या पर को नहीं जानता, अपितु एक साथ स्व-पर-प्रकाशक है |
14. वह वटकणिका मात्र या सर्वव्यापी नहीं है, स्वदेहप्रमाण ही है, संकोच-विस्तार उसका स्वभाव है |
15. वह सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध नहीं है |

16. वह सर्वथा नित्य [कूटस्थ] या सर्वथा अनित्य [क्षणिक/क्षणभंगुर] भी नहीं है |
17. वह अपने परिणामों का कर्ता-भोक्ता स्वयं है |
18. राग-द्वेष आत्मा के स्वभाव नहीं हैं, विभाव हैं; उनका अभाव किया जा सकता है |
19. आत्मा शुद्ध होने के बाद कभी पुनः अशुद्ध नहीं हो सकता |
20. आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगमन है, संसारावस्था में कर्म-प्रेरित होकर ही वह तिर्यक्-गमन करता है |

इन बिन्दुओं का समीचीन निर्णय हुए बिना अथवा इनके सम्बन्ध में मिथ्या मान्यता रहते हुए कदापि आत्मानुभूति सम्भव नहीं है और इनका समीचीन निर्णय न्यायशास्त्र के द्वारा ही सम्भव है, अन्यथा नहीं, किसी के कहने मात्र से भी नहीं | अत: हमें न्यायशास्त्र का अवश्य ही अभ्यास करना चाहिए |

प्रश्न- आत्मानुभूति तो सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और नारकी जीवों को भी हो जाती है, उन्हें तो न्यायशास्त्र का ज्ञान होता ही नहीं, फिर उन्हें कैसे आत्मानुभूति हो जाती है ?

उत्तर- उन्हें भी न्यायशास्त्र का यथोचित ज्ञान अवश्य ही होता है, तभी उन्हें आत्मानुभूति होती है | भले ही वे उसे बहुत व्यवस्थित रूप से नहीं जान और कह सकते हैं, परन्तु प्रमाण-नयात्मक न्याय के द्वारा ही उन्हें भी आत्मतत्त्व का निर्णय और अनुभव होता है, उसके बिना नहीं | जिसप्रकार वे जीवादि सात तत्त्वों का भी सम्यक् स्वरूप पहचान जाते हैं, भले ही कह नहीं पाते, उसीप्रकार प्रमाण-नयात्मक न्याय को भी वे अनिवार्य रूप से पहचान जाते हैं |

तथा जिसप्रकार जीवादि सप्त तत्त्वों का स्पष्ट ज्ञान करने से हमें सुगमतापूर्वक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है, उसीप्रकार न्यायशास्त्र के ज्ञान से हमें सुगमतापूर्वक आत्मानुभूति की प्राप्ति होती है | तिर्यंचादि को तो यह दुर्लभ ही होती है, क्वचित् कदाचित् ही होती है |

आत्मानुभूति में न्यायशास्त्र के ज्ञान की क्या उपयोगिता है– इस सम्बन्ध में कतिपय निम्नलिखित शास्त्र-वचन/उद्धरण भी गम्भीरतापूर्वक विचारणीय हैं –

1. प्रमाणनयैरधिगम: | -तत्त्वार्थसूत्र 1/6
2. जैन न्याय का प्रयोजन तत्त्वाधिगम है, वाद-विवाद नहीं | -न्यायविनिश्चय
3. आन्वीक्षिक्यध्यात्मविषये | -नीतिवाक्यामृत, 5/63

4. न्यायशास्त्र तुला के समान है| प्रमाणमीमांसा
5. जो ण पमाण-णएहिं णिक्खेवेण णिरक्खदे अट्ठं | तस्स अजुत्तं जुत्तं जुत्तमजुत्तं च पडिहादि || (जो प्रमाण-नय-निक्षेप से अर्थ को नहीं देखता है, उसे अयुक्त युक्त और युक्त अयुक्त प्रतिभासित होता है|) -तिलोयपण्णत्ति 1/82
6. जदि इच्छह उत्तरिदुं अणाणमहोदहिं सुलीलाए | ता णादुं कुणह मइं णयचक्के दुणयतिमिरमत्तंडे ||(यदि अज्ञान-समुद्र को लीला मात्र में पार करना चाहते हो तो नयचक्र में बुद्धि लगाओ|) - नयचक्र 419
7. जे णयदिट्ठीविहीणा ताण ण वत्थु-सहाव-उवलद्धि | (जो नयदृष्टि से रहित हैं, उन्हें वस्तुस्वभाव की उपलब्धि नहीं होती |)- नयचक्र 181
8. जो आत्मा का समीचीन लक्षण नहीं जानता, वह मूढ़ है, नपुंसक है | - समयसार, 39
9. आत्मानमेवमधिगम्य नयप्रमाणनिक्षेपकादिभिरभिश्रयतैकचित्ता: |(जो आत्मा को प्रमाण-नय-निक्षेप से जानता है वही उसमें एकाग्र हो पाता है |) – पद्मनंदी पंचविंशतिका, 139

इस प्रकार उक्त उद्धरणों को समझने से भी यह भलीभांति सिद्ध होता है कि आत्मानुभूति में न्यायशास्त्र के ज्ञान का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है, अतः हम सबको न्यायशास्त्र का यथासम्भव ज्ञान अवश्य करना चाहिए |

न्यायशास्त्र के प्रारम्भिक अभ्यास हेतु निम्नलिखित तीन ग्रंथ विशेष उपयोगी हैं-

1. परीक्षामुखसूत्र (आचार्य माणिक्यनंदी)
2. न्यायदीपिका (अभिनव धर्मभूषण यति)
3. न्यायमंदिर (प्रो. वीरसागर जैन)

अंत में, सभी लोग न्यायशास्त्र का ज्ञान करके उसके द्वारा आत्मतत्त्व का अन्वेषण करके आत्मतत्त्व की अनुभूति करें – इसी मंगल भावना से मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ |